अनुभव
चिन्तन
मनन

आदर्श साहित्य संघ प्रकाशन

प्राक्कथन

मुनिश्री नथमलजी द्वारा लिखित गद्यगीतो और लघु निबन्धो का सकलन— अनुभव, चिन्तन, मनन— देखा। छोटे-छोटे गद्यगीतो मे उन्होने बहुत ही प्रेरणादायक अनुभव और चिन्तन का प्रकाश भर दिया है। अनुभव क्या है? मुनिजी ने बताया है कि 'अनुभव का अर्थ है— देश,काल और परिस्थिति की दूरी की समाप्ति और अपने मे बाहर की सक्रान्ति। काच जितना स्वच्छ होता है, प्रतिबिम्ब उतना ही स्वच्छ होता है, मन सवेदना से जितना भरा होता है, अनुभूति उतनी ही तीव्र होती है।' मुनिश्री ने इसी स्वच्छ सवेदनशील चित्त से प्राकृतिक व्यापारो को देखा है और उससे वहुमूल्य निष्कर्षो पर पहुचे है। अपने देश मे तत्त्वज्ञान के लिए 'दर्शन' शब्द का प्रयोग हुआ है। दर्शन अर्थात् देखना। परन्तु क्या सबका देखना दर्शन है? जो चित्त योगशुद्ध है, जिसमे मलिन भाव और आविलता नही है उसी का देखा हुआ तत्त्व 'दर्शन' की कोटि मे आ सकता है। जो व्यक्ति पक्ष-विपक्ष की माया से छुटकारा नही पा सका, उसका देखना सही देखना नही होता। इसीलिए 'चिन्तन' सहज ही स्फुरित होता है। विकृत से प्रकृत की ओर होने वाली स्फुरणा ही चिन्तन है। मुनिजी ने बहुत ठीक लिखा है —"सिद्धान्तवादिता से मौलिकता नही आती, मौलिकता के आधार पर सिद्धान्त स्थिर होते हैं। क्योकि सिद्धान्तवादिता से आलोचना प्रतिफलित होती है और अनुभूति से मौलिकता।"

इस आलोचना-जर्जर युग मे इस सहृदय सवेदन स्वानुभूति का वल क्षीण हो गया है। मनुष्य के सहानुभूतिपरायण निर्मल चित्त मे स्नान करने के बाद ही सिद्धान्त ग्राह्य हो सकते है।

मुनिजी ने जिस शब्दावली का प्रयोग किया है वह सरल और प्रेषणधर्मी है। कभी-कभी उन्होने ऐसे शब्दो का प्रयोग किया है जो पारम्परिक अर्थो से कुछ भिन्न लगते है। यह उनके स्वतत्र चिन्तन का परिणाम है। मैं जिस बात को 'सहज' समझता हू, कदाचित् मुनिजी उससे भिन्न अर्थ मे उसका प्रयोग करते हैं। इससे मैं चिन्तित नही हू। भारतीय चिन्तन-साहित्य मे ऐसा और भी होता रहा है। मूल भाव पर जाना चाहिए।

इस छोटी-सी पुस्तक को पढकर मुझे बडी प्रसन्नता होती है। मुझे आशा है कि सहृदयो को इस पुस्तक से आनन्द और प्रेरणा, दोनो की प्राप्ति होगी।

—डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी

अपनी ओर से

यह मेरे कुछेक गद्यगीतो व लघु निबन्धो का सकलन है। सकलन के लिए ये नही लिखे गये पर जो लिखा जाता है उसका सकलन हो जाता है। मनुष्य चिरकाल से सग्रह का प्रेमी है। वह विखरे को वटोर लेता है और फूलो की माला बना देता है।

मालाकार की अगुलियो मे कला है और धागे मे फूलो को गूथ वह कलाकार बन जाता है। कला तरु मे नही होती। उसके पास कोरे फूल होते है। कलाकार होता है माली। तरु सग्रह करना नही जानता। उसे स्वार्थी लोग भला कलाकार कैसे माने ? मालाकार सग्रह करने मे पटु होता है और वह सहज ही कलाकार बन जाता है।

मुनिश्री दुलहराजजी ने इन शब्द-पुष्पो को चुना और यह एक पुष्पहार बन गया। इसके सौन्दर्य की मीमासा पहनने वाले करेंगे। मैं सग्रह से दूर रहा हू, तब भला आलोचना मे क्यो फँसूगा? मेरी वह कृति अकृति होती है जिसमे परम श्रद्धेय आचार्यश्री तुलसी के वरदान की स्मृति न हो। आचार्यवर ने मुझे वह दिया, जिसे पाकर अतृप्ति भी होती है और परम तृप्ति भी।

—मुनि नथमल

कलकत्ता

१४ सितम्बर, १९५९

(भिक्षु चरमोत्सव)

प्राथमिकी

प्रस्तुत ग्रन्थ 'अनुभव चिन्तन . मनन' की दूसरी आवृत्ति है। प्रथम आवृत्ति से इसमे कुछ परिवर्तन किया गया है। उसमे विजय-यात्रा के कुछ अश सम्मिलित थे। इसमे वे नही है। किंचित् क्रम-भेद भी हुआ है। देश-काल के साथ रुचि का भी परिष्कार होता है और उसके साथ वस्तु का आकार-प्रकार भी परिष्कृत होता है। प्रस्तुत ग्रन्थ परिष्कृत रूप मे ही पाठको के हाथो मे जाएगा।

तेरापथ-भवन —मुनि नथमल

मद्रास-१

१० सितम्बर, १९६८

अनुक्रम

अनुभव

अनुभव क्या है ?—योग और वियोग की कहानी ही तो है। रवि की रश्मि का स्पर्श कर अब्ज हँस उठता है। रवि अस्त होता है, वह कुम्हला जाता है।

खिलना और सिकुडना अनुभव ही तो है। अनुभव का अर्थ है—देश, काल, क्षेत्र और परिस्थिति की दूरी की समाप्ति और अपने मे बाहर की सक्रान्ति।

काच जितना स्वच्छ होता है, प्रतिबिम्ब उतना ही स्वच्छ होता है। मन सवेदना से जितना भरा होता है, अनुभूति उतनी ही तीव्र होती है।

चिन्तन

चिन्तन क्या है?—जीवन की गहराई का प्रतिबिम्ब। दुश्चिन्ता क्या है ?—जीवन-सम्पदा की अन्त्येष्टि। इस प्रश्नोत्तर की भाषा ने मन की गाठ खोल दी। फिर मैंने देखा यह चिन्तन सहज ही स्फुरित होता है, इसके पीछे प्रकृत अनुभूति होती है। दुश्चिन्ता के मूल में विकृत मनोभाव होता है। विकृत से प्रकृत की ओर होने वाली स्फुरणा ही चिन्तन है।

मनन

अनुभूति मे विवेचन नही होता, चिन्तन मे गति नही होती। अनुभूति का परिपाक विवेक मे होता है और विवेक का परिपाक होता है मनन मे। मनन क्या है? ज्ञान और आचरण की रेखाओ का समीकरण ही तो मनन है।

नींव का पत्थर

यह निर्णय तुम्हीं को करना है कि तुम नीव का पत्थर बनना चाहते हो या ध्वज ?

जबकि—

नीव का पत्थर आधार होता है, ध्वज प्रतीक ।

नीव का पत्थर अदृश्यमान होता है, ध्वज दृश्यमान ।

नीव का पत्थर अचल होता है, ध्वज चलाचल ।

महान्

मन लोभ से भरा था तब मुझे वे लोग बडे लगते थे, जिनके पास बहुत था। मन जब खाली हुआ तो लगा कि महान् वे हैं, जिनके पास अपना कुछ भी नही है।

० ०

जो व्यक्ति केवल व्यक्ति ही रहकर महान् होता है, वही महान् है और जो व्यक्ति शक्ति के सहारे महान् कहलाता है, वह महान् होता भी होगा या नही यह निश्चित नही कहा जा सकता।

उषा और संध्या

नया आलोक लिए उषा आती है, हम प्रकाश से भर जाते है।

संध्या आती है और हमारे जीवन की एक गाठ को खोलकर चली जाती है। एक दिन आता है जीवन की गाठ शेष नही रहती।

अणु और महान्

स्थूल सूक्ष्म से निकलता है, वीज से वृक्ष बनता है, अणु से स्कन्ध और बिन्दु से सिन्धु और वह सूक्ष्म मे ही विलीन हो जाता है। वृक्ष की अन्तिम परिणति बीज है, स्कन्ध की अणु और सिन्धु की बिन्दु।

निर्वाचन का प्रश्न

मैं दो पत्नियो का पति नही हू। फिर भी मेरी स्थिति इसलिए विचित्र है कि मैं दो नेताओ के आकर्षण मे हूं। इन्द्रियां मुझे उस ओर ले जाना चाहती है, जहा आदि में थोडा सुख है और अन्त मे दु:ख ही दु ख। विवेक मुझे उस ओर ले जाना चाहता है, जहा आदि मे थोडा दु ख हे और अन्त मे सुख ही सुख।

मुक्ति

रस्सी ! मुझे मुक्ति दो !

अब तुम लम्बी हो चली हो। एक साथ बहुतो को बाँधना चाहती हो।

वह सघनता अब बच नही रही है।

तब विश्वास था, अब सन्देह।

तब बन्धन था, अब मुक्ति।

रस्सी ! तुम लम्बी हो चली हो।

अब मुझे मुक्ति दो।

अनुभूति

मरते समय जो अनुभूति होती है वह पहले हो जाए तो कोई किसी को मार ही नही सकता।

० ०

वह मुझे देख रहा है—इस कल्पना मे मेरी दुर्बलता आकार पा रही है। उसकी दुर्बलता उसी मे है कि वह मुझे सन्देह की दृष्टि से देखता है।

बन्धन और मुक्ति

यह सौन्दर्य बन्धन और मुक्ति के समन्वय का गीत गा रहा है। यह सौरभ बन्धन और मुक्ति के समन्वय का गीत गा रहा है। यह सरसता बन्धन और मुक्ति के समन्वय का गीत गा रही है। मूल ने तने को गति दी और उसने शाखाओ की स्वतन्त्र दिशा को नही रोका। शाखा तने से और तना मूल से बधा रहा। पथिक ने देखा पत्र को, पुष्प को और फल को, पर उसने नही देखा पूर्वज को, अपनी सतति को मुक्ति देते हुए और नही देखा सतति को, अपने पूर्वज से अपने-आपको बाधते हुए।

आवरण

मैं दूर खडा-खडा आश्चर्य की दृष्टि से देखता रहा—सूर्य का अभिनन्दन उन्होने किया जो तिमिर को अपने मे छिपाए हुए थे।

सत् का अभिनन्दन उन्होने किया जो असत् को अपने मे छिपाए हुए थे।

जन्म का अभिनन्दन उन्होने किया जो मृत्यु को अपने मे छिपाए हुए थे।

स्मित का अभिनन्दन उन्होने किया जो अश्रुओ को अपने मे छिपाए हुए थे।

मैं दूर खडा-खडा आश्चर्य की दृष्टि से देखता रहा—

तिमिर प्रकाश का कवच पहने हुए है।
असत् सत् का कवच पहने हुए है।
मृत्यु जन्म का कवच पहने हुए है।
अश्रु स्मित का कवच पहने हुए है।

उतार-चढ़ाव

मैं सागर की गहराई को विस्मय की दृष्टि से देख रहा था और सागर मेरे मन की गहराई मे डूबा जा रहा था।

० ०

मैं हँस रहा था उर्मियो के उतार-चढाव पर किन्तु मुझे पता नही था—वे पहले ही मेरी कल्पनाओ के उतार-चढाव पर हँस रही थी।

० ०

परिपक्व के लिए बन्धन नही होता, किन्तु तरु ने फल को तब तक बाधे रखा जब तक वह पूरा पक नही गया।

मुक्ति-प्रेम

जेठ का महीना था। धूप लहरी विकराल वन रही थी। पनि-हारी ने जल का तपा घडा काठ की पट्टी पर ला रखा। नीचे गरम पवन से तप्त धूलि थी।

वन्धन असह्य होता है। वलिदान का भाव उत्कृष्ट हुआ। जल का एक विन्दु नीचे गिरा। मैंने देखा—धूलि ने उसे सोख लिया। दूसरा गिरा पर वह भी वच नही सका। नीचे गिरते और सोखे जाते हुए सव विन्दुओ का मुक्ति-प्रेम मैंने नही देखा और मिट्टी की सम-रस नृशसता को भी मैंने नही देखा। पर मैंने देखा कि अव घडा खाली है।

विषपान

अमृत पी मनुष्य क्लान्त हो गया है। उसकी गति कुंठित है। आज उसे विष की बूंदे पीनी होगी अन्यथा अमृत स्वय विप बन जाएगा।

अब विपपान कर। चिरकाल से तू अमृत पीता रहा हैं। अत· तेरा उद्गार भी विकृत हो चला है। लघन के क्रम का उल्लघन मत कर अन्यथा अमृत व्यर्थ हो जाएगा। विप को अमृत किया इसीलिए नीलकठ शंकर बना है। जिसने विष को पचा लिया, वह अमर हो चुका।

प्रकृति के अंचल में

"कर्म में तेरा अधिकार है, फल मे नही"—इसे मनुष्य गाता रहा किन्तु तरु उसे निभाता रहा।

° °

झुके हुए आम्र ने कहा—फल देने के लिए होता है, अपने लिए नही।

° °

जो फल लिए जाते है, वे खट्टे होते है। मिठास उनमें होता है जो दिए जाते हैं।

अस्ति-नास्ति

नास्तिक ने आत्मा का अस्तित्व न माना तो क्या ? उसके पास विधि का अक्षय कोप है। आस्तिक ने आत्मा का अस्तित्व माना तो उसे एक के बदले मे विशाल निपेध-शास्त्र का निर्माण करना पडा।

परिमित

शब्द उतने ही हों, जितना अर्थ हो। पानी उतना ही डालो, जितनी चीनी हो। वे शब्द किस काम के जो अर्थ का गौरव निगल जाए और वह पानी किस काम का जो चीनी की मिठास को हर ले।

लोभ-विस्तार

कण-कण तुम्हारा मीठा है ईक्षु, फिर भी लोभ-सवरण नही हुआ। ये सुरभिहीन फूल क्या तुम्हारी मधुरिमा के अनुरूप है ?

व्यक्तिवाद

चादनी की सफेदी मे खजूर के तनों को विलीन होते देखा और देखा कि अपनी ही महिमा के रग मे रगे हुए पत्ते शून्य मे निराधार-से खड़े थे।

सृष्टा कौन ?

कोलाहल होता है, हम जग जाते है। शान्ति होती है, हम सो जाते हैं। यह हमारी आरोप की भाषा है। सच तो यह है, हम जगते है तभी कोलाहल होता है, हम सोते है तभी शान्ति। कोलाहल और शान्ति हमारी ही परिधिया है।

कसौटी

एक व्यक्ति अच्छा है इसलिए उसे अच्छा मानू, यह गुणानुराग है। जिससे स्वार्थ सधे उसे अच्छा मानू, यह मेरा स्वार्थ है।

जिन घटनाओ के स्मृतिमात्र से सिहरन पैदा होती है, आंखें गीली हो जाती है, उनमे या तो उन्माद छिपा होता है या आशीर्वाद।

सुन्दर या सुखी ?

मै सुन्दर लगता हू औरो को और दु खी बनता हू अपने मे। बाहरी उपकरणो से सौन्दर्य बढता है और सुखी बनता हू उन्हे छोडकर।

मैं दूसरो के लिए सुन्दर बनू या अपने लिए सुखी ?

गति-स्थिति

केवल गति ही नही, स्थिति भी चाहिए। पवन मे गति है पर स्थिति नही। इसीलिए वह पल-पल मे ठडा और गरम, पल-पल मे सुरभित और दुर्गन्धित होता रहता है, जैसे अपना कोई अस्तित्व ही नही।

इसके बाद भी

बादल चले जा रहे थे। अनन्त ने उनका सम्मान किया, क्योंकि वे बरसने को जा रहे थे।

बादल चले जा रहे थे। अनन्त ने उन्हे छाती से चिपका लिया क्योंकि वे बरसकर आ रहे थे।

सापेक्षता

कठिन को सरल बना, कठोर को मृदु। वह ठंडक किस काम की जो पानी को पत्थर बनाती है और वह गर्मी भी क्या बुरी है जो पत्थर को पानी बनाए।

एक ही लौ

शत्रु वह नही है, जो हमारे ही जैसा है। मनुष्य मनुष्य जैसा है। मनुष्य मनुष्य का शत्रु नही हो सकता। दीप आलोक देता है, भले फिर वह पूरब का हो या पश्चिम का। आलोक आलोक का शत्रु नही है।

लघुता का प्रसाद

यह सच है लघु बने बिना कोई भी ऊंचा नही उठता। जल स्वतन्त्रता से घूमता-फिरता नीचे चला गया। वह पात्र मे पड़ा और तपा कि लघु हो गया, वाष्प बन अनन्त मे लीन हो गया।

तपे बिना कौन लघु हो सकता है? और लघु बने बिना कौन अनन्त को छू सकता है?

गांठ को खोल

गाठ को खोल डाल। इधर-उधर चलता हुआ सूत्र अपने आप मे गाठ बना लेता है परन्तु इधर-उधर घूमने से वह गाठ खुलती नही। गाठ पैदा करने मे कौन कुशल नही है परन्तु उसको खोलने का कौशल विरलो मे है। मिलना अच्छा है, परन्तु जहा गाठ हो वहा नही, क्योकि वह पथ का रोडा है।

गांठ का धागा

माला फेरने वालों के लिए आलम्बन ग्रन्थि ही होती है। ग्रन्थि मुक्ता और मणियो को नीचे गिरने से बचाती है। परन्तु शर्त इतनी ही है कि वह ग्रन्थि ससूत्र हो। जो ससूत्र है, उनके लिए ग्रन्थि भी सहजानन्द देने वाली होती है। तू बद्ध होने पर भी मुक्ति की ओर चल—मुक्ति की भावना रख, गाठ खुल जाएगी। ससूत्र चल, मार्ग सरल हो जाएगा।

गर्वोन्माद

"हे कवे ! मै गर्वोन्मत्त हू, ऐसी तू परिकल्पना मत कर। मै सोचता हू कि रात्रि मे जब अन्धकार चारो दिशाओ मे व्याप्त हो जाता है और उस समय सारा जगत् निश्चिन्त हो सुख की नीद सोता है, तब प्रतिपल यह सम्भावना बनी रहती है कि कही कुछ अनिष्ट न हो जाय। यदि उस समय यह निरालम्ब आकाश नीचे गिर पडे तव उसे कौन झेले ? इसीलिए मै अपने पैरो को ऊचे किए सोता हूं। कवे ! विश्वास कर यह मेरा गर्वोन्माद नही है'—सस्मित टिट्टिभ ने कवि से कहा।

श्रद्धा और तर्क

तर्क अपने आप मे शून्य है ।
श्रद्धा का उत्कर्ष ही तर्क है ।
जिस वस्तु मे श्रद्धा रम जाती है ।
उसका समर्थन-सूत्र ही तर्क है ।
आज कसौटी है, सोना नही ।
तर्क है, अनुभूति नही ।
अनुभूतिहीन तर्क का उतना ही मूल्य है,
जितना सोने के बिना कसौटी का ।

सीमा को तोड़कर

मनुष्य विवेकी है। वह पानी को उतना ही ऊचा ले जाता है, जितना कि वह कुए मे है।

अपनी क्षमता के विना ऊचा चढने वाला इसकी अवहेलना करता है। यह कौन नही जानता कि पानी को निम्न स्थान से समतल पर लाने मे कितनी शक्ति खपानी पडती है। उसे ऊचा फेकने पर भी वह नीचे लौट आता है और फेकने वाले पर धूलि उछालता है।

साम्य या अविवेक

दिन अपने साथ प्रकाश लाता है इसलिए वह स्पष्ट है। रात इसीलिए अंधेरे मे रहती है कि वह सबको एक समान बनाना चाहती है।

सचाई

मनुष्य ने कृत्रिम प्रकाश कर रात को दिन बनाना चाहा, पर नीद से अधमुदी आखो ने यह मानने से इन्कार कर दिया कि अभी दिन है।

अपना-अपना स्वभाव

रवि अपनी रश्मियो से भूमि का रस खीच सुदूर देश मे चला गया। इसमे क्या आश्चर्य! यह विदेशी का स्वभाव है। वह रस-द्रवित होकर पुन भूमि पर नही आता, उसे अभिषिक्त नही करता तो अवश्य ही वह कृतघ्न होता।

पर्दे के उस ओर

मैं ढूंढ रहा था भगवान् को, भगवान् ढूंढ रहे थे मुझे। अकस्मात् हम दोनों मिल गए। न तो वे झुके और न मैं ही झुका। वे मुझसे बड़े नहीं थे, मैं उनसे छोटा नहीं था। पर्दा मुझे उनसे विभक्त किए हुए था। वह हटा और मैं भगवान् हो गया।

दिशा की खोज

जहा वनने और विगडने का सर्वोपरि माध्यम किसी दूसरे व्यक्ति की इच्छा ही होती है, वहा वनते बहुत कम है, विगडते है अधिक ।

गतिरोध

सिगनल झुका, रेल चलती गई।

वह स्तब्ध रहा, रेल रुक गई।

गतिरोध वहा होता है जहा स्तब्धता होती है।

प्रकाश और तिमिर

सूर्य ! तुम्हारे पास और सब कुछ है, आवरण नही। तिमिर अपने आचल मे समूचे विश्व को छिपा लेता है। रवि ! तुम यह नही कर पाते, असमर्थ हो तुम ! तिमिर मे साम्य है, एकत्व है। तुम्हारे रश्मिजाल मे विश्लेषण है, भेद है। शान्ति और मौन लेकर आता है तिमिर, तुम लाते हो क्रान्ति और तुमुल।

वसन्त फिर आएगा

एक बूढा आदमी पेड के पास आकर बोला—ओह ! यह क्या ? फल नही सो नही, फूल भी नही ? अरे ! फूल कहा, एक पल्लव भी नही ? नंगी टहनियो की कैसी शोभा खिली है ! वाह रे पतझड ! तुम हो न इसमे यह बीने।

पेड मुसकराया उसकी झुर्रियो पर और मुसकराया उसकी मूर्खता पर और उसने हँसी के स्वर मे कहा—वसन्त फिर आएगा, यौवन नही।

मैं कैसे मानूं ?

'धन अनर्थ का मूल है, वह वहुत बुरा है'—मुनि ने कहा। प्रतिकार के स्वर मे सेठ बोला—'महाराज ! जव मैं निर्धन था, तब मुझे कोई नही पूछता था। मै सयम से रहता, फिर भी लोग मुझे बेईमान कहते। मैं धनी हुआ, लोग मेरे चरण चूमने लगे। मेरा वह सयम अब नही रहा, तव भी लोग मुझे महान् कहते है—मैं कैसे मानू धन बुरा है ?'

मिलन और विरह

मिलन मे सुख है और विरह मे वेदना। मानव मिलन-प्रेमी है और विरह-विद्वेषी। पर उसने यह कब सोचा—विरह के बिना मिलन मे सुख कब होता है?

कैंची और सूई

काटना सहज है, साधना कठिन। कैंची अकेली चलती है, सूई धागे के बिना नही। कैंची का कार्य सीधा है, सूई के कार्य में असख्य उलझने हैं—असख्य घुमाव है।

वहुत से क्या ?

वहुत से क्या ?
एक चिनगारी चाहिए,
फिर कोयले स्वय जगमगा उठेंगे ।
वहुत से क्या ?
एक वीज चाहिए,
शाखाए स्वय निकल आएगी, फूल स्वय रस से भर जाएगे ।
वहुत से क्या ?
पवन की एक हिलोर चाहिए,
फिर अन्धकार स्वय प्रकाश वन जाएगा ।
वहुत से क्या ?
एक मनुष्य चाहिए,
फिर मनुष्यता स्वय निखर उठेगी ।

सुरक्षा

एक तने पर अनेक शाखाए होती है,

एक शाखा पर अनेक फल होते है,

एक फल मे अनेक बीज होते है।

शाखाओ की अन्तिम परिणति सुन्दरता और फलो की अन्तिम परिणति सरसता मे होगी।

किन्तु

बीज वृक्ष बनेंगे

इसीलिए फलो ने उन्हे अपने उदर मे छिपाए रखा।

जीवन के नैतिक मूल्य

अकिंचन हू, इसीलिए मैं महान् हू ।

कामनाए सीमित हैं, इसीलिए मैं सुखी हू ।

इन्द्रियो पर नियन्त्रण रखता हू, इसीलिए मैं स्वतन्त्र हू ।

कथनी और करनी मे भेद नही जानता, इसीलिए मैं सरस हूं ।

अपनी कमजोरियो को देखता हू, इसीलिए मै पवित्र हू ।

सबको आत्म-तुल्य मानता हू, इसीलिए मैं अभय हूं ।

नियंत्रण

आय और व्यय अर्थ के सहज रूप है। आय के अनुपात से व्यय करने मे अधिक खतरा नही। व्यय के अनुपात से आय बढाने की बात मे गम्भीर खतरा है। आय के साधनो को दोषपूर्ण किए बिना व्यय बढाने की बात नही होती। अनैतिकता से वही बच सकता है जो आय के स्रोतो पर नियत्रण करने के साथ-साथ व्यय पर भी नियत्रण रखे।

आत्म-लोचन

आत्म-लोचन वह है, जो परलोचन की वृत्ति को निर्मूल कर दे। आत्म-निरीक्षण वह है, जो परदोष-दर्शन की दृष्टि को मिटा दे। दूसरो की आलोचना वही कर सकता है, जिसमे आत्म-विस्मृति का भाव प्रबल होता है।

दूसरो को वही देख सकता है, जिसे आत्म-दर्शन की अच्छाइयो का ज्ञान नही होता।

अनन्त दीप-मालाए भी वह आलोक नही दे सकती, जो आलोक आत्म-लोचन और आत्म-निरीक्षण से मिलता है।

क्षमा

क्षमा का अर्थ है—सहना। सहना पडे वह सामर्थ्यहीनता है। सहने को अपना धर्म मानकर विरोधी भाव को सहना क्षमा है। क्षमा शक्तिशाली का अस्त्र है।

अपनी शक्ति के उन्माद पर नियत्रण रखना क्षमा है। परिस्थितियो की प्रतिकूलता मे उत्तेजित न होना क्षमा है। दूसरो को क्षमा देना नही जानता, वह तुच्छ है। दूसरो से क्षमा लेना नही जानता, वह उद्दण्ड है।

शान्ति उसे मिलती है, जिसके हृदय मे क्षमा लहराए।

दूसरो की कमज़ोरियो, अपराधो और भूलो को भुला सके, वही आनन्द का स्रोत बन सकता है।

अपने अपराधो के लिए क्षमा मागने मे जो न सकुचाए, वह महान् है।

सिद्धान्त और अनुभूति

आज आलोचकों की भरमार है, मौलिक स्रष्टा कम और बहुत कम। कारण सैद्धान्तिकता अधिक है, अनुभति कम। सिद्धान्त-वादिता से आलोचना प्रतिफलित होती है और अनुभूति से मौलिकता। सिद्धान्त से मौलिकता नही आती, मौलिकता के आधार पर सिद्धान्त स्थिर होते है।

व्यक्ति और समूह

व्यक्ति मे निर्माण की शक्ति होती है, स्वतत्र मूल्य होता है, किन्तु व्यक्ति व्यक्ति के बीच विराम होता है, इसलिए शक्ति सचय नही होती। इसका उदाहरण है—१, २, ३।

समूह-दशा मे निर्माण-शक्ति नही होती। वह स्वय निर्मित होती है। उसका स्वतत्र-मूल्य भी नही होता। किन्तु उसमे एक-दूसरे के बीच विराम नही होता, इसलिए उसकी शक्ति सचित रहती है। इसका उदाहरण है—१२३।

०　　　　　　　　०

समाज का मूल्य व्यक्ति है और व्यक्ति का मूल्य चैतन्य। चैतन्य की पवित्रता से व्यक्ति और व्यक्ति की पवित्रता से समाज पवित्र बनता है। पवित्रता का आचरण वैयक्तिक होता है और उसका मूल्याकन सामाजिक।

व्यापक या विशुद्ध

धर्म जनता के अनुकूल ढलता है तो वह व्यापक बन जाता है किन्तु वह विशुद्ध नही रह सकता।

जो धर्म जनता को अपने अनुकूल ढालना चाहता है वह विकृत नही बनता तो व्यापक भी नही बनता।

भूल और यथार्थ

भूल क्या है ? साध्य के प्रतिकूल जो है, वह भूल है। साध्य का निर्णय किए बिना, भूल या यथार्थ का निर्णय नही होता।

साध्य का निश्चय होने पर जो साध्य के अनुकूल होता है, उसे हम यथार्थ और जो साध्य के प्रतिकूल होता है, उसे भूल कहते हैं।

आत्मा और व्यवहार

आत्मा के साथ व्यवहार की टक्कर होती है तब मनुष्य जितना कर्तव्यमूढ बनता है, उतना और कही नही बनता। आत्मा की बात मानने पर व्यवहार टूटता है और व्यवहार साधने मे आत्मा को गवाना पडता है। ऐसी स्थिति मे पूर्ण विवेक से काम लेना चाहिए।

व्यवहार को कटु न बनाते हुए आत्मा की रक्षा करना ही सर्वश्रेष्ठ है।

आत्मा के साथ खिलवाड करने वाला व्यवहार को भली-भाँति नही निभा सकता।

ऊंचाई की आत्मा

सफलता के साथ-साथ बढने वाली लघुता दायित्व को और भी भारी बना डालती है। साधना से मिली ऊंचाई परम्परा से पायी हुई ऊंचाई को और भी ऊंचाई प्रदान करती है। सौंपी हुई ऊंचाई नापी जा सकती है। वह ऊंचाई का शरीर है। साधना की ऊंचाई ऊंचाई की आत्मा है। वह अमाप्य होती है।

विद्यावान् कौन ?

विद्या और अविद्या मे जो अन्तर है, उसे समझ लेना ही जीवन की सर्वोपरि साधना है। साधना केवल योगियों के लिए ही नही, जो भी व्यक्ति अपना जीवन शान्तिपूर्ण ढग से बिताना चाहे, उन्हें साधना का अवलम्बन लेना ही चाहिए। जो सब कुछ जानकर भी अपने आपको नही जानता, वह अविद्यावान् है। विद्यावान् वही है, जो दूसरो को जानने से पूर्व अपने आपको भली-भाति जान ले।

श्रद्धा

श्रद्धा का इतिहास आसुओ की स्याही से लिखा गया है। जहा भक्त का हृदय भक्ति के उद्रेक से पिघल जाता है, वहा वह भगवान् को भी पिघला देता है।

० ०

जहा तर्कों की कर्कशता होती है, वहा आपसी सम्बन्ध सरस हो नही पाते। एकात्मकता का उदय विश्वास की भूमिका मे ही होता है और वहा सारा द्वेध विलीन हो जाता है। आसानी से या कठिनाई से मिलने वाले सब स्वादो का अनुभव करने पर भी जिसने श्रद्धा का स्वाद नही चखा, उसका जन्म बेकार है।

० ०

श्रद्धे! तेरे प्राणकोश अत्यन्त सुकुमार होने पर भी तू उन्ही व्यक्तियो से अनुराग करती है जो भयकर कष्टो के तूफान मे अडोल रहते हो—यह बडा आश्चर्य है।

तर्क का हनन

तार्किक दृष्टिकोण से न तो मर्यादाओ का पालन किया जा सकता है और न कराया जा सकता है। उनका पालन करने वाला श्रद्धावान् और उनका पालन कराने वाला हृदयवान् हो, तभी उसका निर्वाह हो सकता है। बहुत लोग, जो अपने आपको कूटनीतिक मानते है, अहिंसा मे विश्वास नही करते। हृदय का मतलब ही है— अहिंसा। जहा हिंसा है, बल-प्रयोग है, राजसी वृत्तिया है वहा हृदय नही होता, छल होता है। छल और श्रद्धा के मार्ग दो है। श्रद्धा की उपज निश्छल भाव मे है। जहा नेता के तर्क के प्रति अनुगामी का तर्क होता है, वहा छोटे-बड़े का भाव नही होता। वहा होता है, तर्क की चोट से तर्क का हनन।

संकल्प

मनुष्य सकल्प का पुतला है। दृढ-सकल्प से एक दिन असाध्य मालूम होने वाली चीज भी साध्य बन जाती है। आदमी मे धैर्य टिकता नही, वह अपने सकल्प को बनाए नही रख सकता। थोडी-सी कठिनाई से डिग जाता है, इसलिए वह लक्ष्य तक पहुचने मे सफल नही होता।

साध्य के लिए

साध्य की प्राप्ति के लिए अपना समर्पण ही अनुशासन है। साध्य-हीन के लिए कोई अनुशासन नही होता। आप जिसे अनुशासित करना चाहे, उसके लिए पहले साध्य निश्चित कीजिए। मनुष्य साध्य के लिए जीता है और उसी के लिए मरता है।

वकालत और अपराध

वकालत कोई स्वयभूत पेशा नही है। उसका मुख्य आधार लोगो का मानसिक असतुलन है। मानसिक सतुलन यानी सयम बना रहे तो अपराध की स्थिति नही आती और अपराध के विना वकीलो का अस्तित्व ही क्या ?

न छोटा, न बड़ा

अध्यात्मवाद स्वय मर्यादा है। हीन भावना न आए इसलिए अध्यात्मवादी मानता है—मैं परमात्मा हू।

गर्व न आए इसलिए अध्यात्मवादी मानता है—सब जीव समान है, सब जीव एक हैं।

० ०

अध्यात्मवादी वह होता है जो दूसरो से न डरे, न दूसरो को डराए, न स्वय दूसरो को ऊच-नीच समझे और न दूसरो से स्वय को ऊच-नीच समझे। सबके प्रति समभाव से बरते।

नियंत्रण और शोधन

समाज का नियत्रण हो सकता है, शोधन नही। शोधन व्यक्ति-व्यक्ति का होता है।

० ०

सत्ता से सामूहिक परिवर्तन हो सकता है, किन्तु वह केवल वाहरी आकार का होता है। उपदेश या समझाने से वैयक्तिक परिवर्तन होता है, किन्तु वह हृदय का होता है। सत्ता का आदेश होता है, उसे कोई चाहे या न चाहे, टाल नही सकता। धर्म का उपदेश होता है, उसे न चाहे वह टाल सकता है। एक मे विवशता है, दूसरे मे हृदय की स्वतन्त्रता।

स्वतन्त्रता के लिए उपदेश चाहिए।

अध्यात्म

आकाक्षा का अभाव अध्यात्म है।

विकार का अभाव अध्यात्म है।

चारित्रिक-कर्मण्यता अध्यात्म है।

अकर्मण्यता अलसता नही किन्तु निवृत्ति-अध्यात्म है।

अध्यात्म का चरम या परम रूप है—अकर्मण्यता यानी दूसरे पदार्थ के सहयोग का अस्वीकार। सर्वथा आत्म-निर्भरता, यह मुक्त-स्थिति है। जीवनकाल मे कर्मण्यता मे अकर्मण्यता का जो अभाव है, वह अध्यात्म है।

अध्यात्मवाद से आकाक्षा की तृप्ति नही, उसका अभाव हो सकता है।

समदर्शन

असयम मे वाह्य निमन्त्रण रहता है, इसलिए असयमी दूसरो के सामने अन्याय करने मे झिझकता है।

० ०

सयम मे अपना नियन्त्रण होता है, इसलिए सयमी एकान्त मे भी अन्याय नही करता।

आत्म-दर्शन

पर-नियन्त्रण की अपेक्षा आत्म-नियन्त्रण अधिक उत्तम है।

दूसरों को अनावश्यक कहने में अपनी मानसिक विडम्बना होती है।

आत्म-दोष-दर्शन की वृत्ति सबसे अधिक जटिल है।

अपनी भूल-सुधार के लिए सबसे सरल और अच्छा मार्ग आत्म-दोष-दर्शन है।

मर्यादा

श्रद्धा के युग मे प्रत्येक मर्यादा की सुरक्षा अपने आप मे थी। युग काफी बदल चुका। तर्क के युग मे वे सहज कार्यकर नही रही। जिस स्थिति को जब बदलना चाहिए, वह ठीक समय मे बदल जाए तो परिणाम अच्छा आता है। उसे आगे सरकाने का यत्न होता है तो वह बदलती अवश्य है, किन्तु प्रतिक्रिया के साथ। कार्यकर मर्यादा वही है, जिसे पालने वालो की श्रद्धा प्राप्त हो।

यहां और वहां

धर्म परलोक सुधारने के लिए है—यह सच है, किन्तु अपूर्ण। धर्म से वर्तमान जीवन भी सुधरना चाहिए, वह शान्त और पवित्र होना चाहिए। अपवित्र आत्मा मे धर्म कहा ठहरेगा ? इसका आलय पवित्र जीवन ही है। जिसे धर्म-आराधना के द्वारा यहा शांति नही मिली, उसे आगे कैसे मिलेगी ? जिसने धर्म को आराधा, उसने दोनो लोक आराध लिए। वर्तमान जीवन मे अंधेरा ही अंधेरा देखने वाले केवल भावी जीवन के लिए धर्म करते हैं, वे भूले हुए है।

एक साथ नही

विलासी जीवन मे धन चमकता है। सादगीपूर्ण जीवन मे व्रत चमकते है। धन और व्रत दोनो एक साथ नही चमक सकते। न्याय साधनो द्वारा जीवन-निर्वाह उपयोगी धन मिल जाता है किन्तु आडम्बर और विलास-योग्य धन नही मिलता। विलास के लिए धन का अतिरेक और उसके लिए अन्यायपूर्ण तरीको का अवलम्बन होता है, व्रत टूट जाते है।

प्रचार

विकास का वास्तविक क्रम यही है—जो सोए हुए हैं, उन्हे जगाओ, जो जागे हुए है, उन्हे प्रगति की ओर ले जाओ। प्रचार अपने-आपमे न गुण है और न दोष। शुद्ध साध्य की उपलब्धि के लिए शुद्ध साधनो द्वारा साधना के क्रम को प्रकाश में लाना प्रचार है। और वह बुरा तो किसी प्रकार नही है।

पंडित और साधक

पशु और पडित मे जितना भेद है, उतना ही भेद पडित और साधक मे। पशु अहिंसा की भाषा नही जानता, जबकि पडित जानता है। साधक वह है जो उसकी भाषा जानने तक ही न रहे, उसकी साधना करे।

भोग और त्याग

भोग समाज की संघातक या संघटक-शक्ति है और त्याग विघा-तक या विघटक शक्ति।

भोग समाज की अपेक्षा है और त्याग उसकी 'अति' का नियन्त्रण। भोग आत्मा का विकार है और त्याग आत्मा का स्वरूप।

यह कैसा स्वाद ?

मेरे या मेरे प्रिय व्यक्ति के बारे मे कोई शिकायत करे, वह मुझे प्रिय नही लगता। दूसरो की शिकायत मे मुझे स्वय रुचि है, पता नही यह कैसा स्वाद है ?

प्रत्येक प्रवृत्ति बहुत ही चिन्तनपूर्वक होनी चाहिए। तात्कालिक प्रवृत्ति मे आवेश होता है। इसलिए उसका परिणाम प्राय इष्ट नही होता।

इस प्रकार..

डोरी को इस प्रकार खीचो कि गाठ न पडे। अपने को इस प्रकार चलाओ कि लडाई न हो। बालो को इस प्रकार सवारो कि उलझन न बने। विचारो को इस प्रकार ढालो कि भिटन्त न हो। तात्पर्य की भाषा मे—आक्षेप और आक्रमण की नीति मत बरतो। उससे गाठ घुलती है, युद्ध छिडते ह, बाल उलझते हे और चिनगारियाँ उछलती हैं।

बहु-निष्ठा

मैंने सोचा—यह बहुनिष्ठा फिर क्या बला है ? उत्तर की अपेक्षा थी। पर दे कौन ? भगवान् ने कह दिया—अणेग-चित्ते खलु अयपुरिसे।' अब एक-निष्ठा की बात कैसे की जाए ?

एकनिष्ठ आखिर है कौन ? रानी ने राजा को धोखा दिया, महावत ने रानी को और वेश्या ने महावत को। कामना का क्षेत्र ही ऐसा है। पहले लगाव होता है, फिर सन्देह और फिर निराशा।

निराशा से परे जो है, वही ब्रह्मचर्य है। जहा आशा ही नही, वहा निराशा कैसी ? यही है एकनिष्ठा। यहा पहुचकर ही मैने समझा, उत्तर पाया, बहु-निष्ठा क्या है ?

अध्यात्म की रेखाएं

अहिंसा का आधार कायरता नही, अभय, समता और सयम है।

अपरिग्रही वह नही, जो दरिद्र है, अपरिग्रही वह है जो त्यागी है।

अध्यात्मवाद से आवश्यकता की पूर्ति नही, उसकी पूर्ति के भावनो का विकार मिट सकता है।

अध्यात्म से पदार्थ की प्राप्ति नही, प्राप्त पदार्थ पर होने वाला ममकार या वन्धन छूट सकता है।

उपहास

मानव मान्यता का यह कितना भीषण उपहास है कि वह जिस धन को बुरा कहता है, उससे बहुत चिपटा हुआ है। वह जिस सत्ता को बहुत कोसता है, उसके पीछे पड़ा हुआ है।

वह जिस धर्म को बहुत अच्छा मानता है, उससे बहुत दूर भागता है।

ओ कर्मकार !

तुमने अव्यक्त को व्यक्त किया है,
अनाकार को आकार दिया है,
आकार में सौन्दर्य भरा है,
सौन्दर्य में उड़ेला है प्राण ।

निवृत्ति और प्रवृत्ति

तुम निवृत्ति की ओर चलो, प्रवृत्ति का स्रोत फूट पडेगा।
तुम निष्क्रय बनो, सक्रियता प्रबल हो उठेगी।
अरूप बनो, तुम विश्व को रूप दे सकोगे।
गहराई मे डूबो, तुम स्तूप खडे कर सकोगे।
मन्थर गति से चलो, तुम वेग दे सकोगे।
आखे मूँदकर देखो, फिर मार्ग दूर नहीं होगा।

मूल्य

जिसका जीवन में कम उपयोग है, उसका अधिक मूल्य है।
सोना इसी वर्ग की वस्तु है।
जिनका जीवन मे अधिक उपयोग है, वे अमूल्य है।
इस श्रेणी मे है—पवन, धूप और छाह।

समस्या और समाधान

मोह से तर्क उत्पन्न होता है। तर्क से सत्याभास की उपलब्धि होती है। उससे उलझने बढती है।

जो निर्मोह होता है, उसमे श्रद्धा उत्पन्न होती है। श्रद्धा से सत्य की उपलब्धि होती है। सत्य की उपलब्धि से मन को समाधान मिलता है।

समय की कमी

समय उन्हें नहीं मिलता, जो कुछ भी नहीं करते। जो व्यक्ति कुछ करते हैं, उनके लिए समय की कोई कमी नहीं।

भ्रम

भय-मुक्त दो होते है—या तो अहिंसक या अपने को हिंसा से सुरक्षित समझने वाला। पहला तथ्य है, दूसरा भ्रम। अहिंसक को जीवन के प्रति मोह नही होता, इसलिए उसे किसी का भय नही होता। जो हिंसा से अपने को सुरक्षित समझता है, वह जीवन के सामने खतरा आते ही काप उठता है।

सम्यक और मिथ्या

आत्मा से आत्मा का अभेद और शरीर से आत्मा का भेद—यह सम्यग् दृष्टिकोण है।

आत्मा से आत्मा का भेद और शरीर से आत्मा का अभेद—यह मिथ्या दृष्टिकोण है।

जटिल और सरल

एक कार्य ऐसा होता है, जिसे समझना जटिल और भूलना सरल होता है।

एक कार्य ऐसा होता है, जिसे समझना सरल और भूलना जटिल होता है।

अज्ञात और ज्ञात

अज्ञात जब ज्ञात होता है तब या तो समभाव बढ़ता है या उन्माद। अज्ञात जब ज्ञात होता है तब या तो विस्मय होता है या विरोध।

व्यक्ति और विराट्

जो अपने बारे मे सोचता है, वह समूचे विश्व के बारे मे सोचता है। अपना विश्व उतना ही विराट् है, जितना यह विश्व है। अपनी समस्याएँ उतनी ही जटिल है, जितनी विश्व की है।

प्रेम

द्वेष के प्रति द्वेष—इसका अर्थ है तुम द्वेष को पुष्ट करना चाहते हो। उसे मिटाने का मार्ग है द्वेष के प्रति प्रेम।

शृंखला

समूचे ससार को कष्ट दिए बिना एक व्यक्ति को कष्ट नही दिया जा सकता। आत्मा का अहित किए बिना दूसरो का अहित नही किया जा सकता।

नन्दन वन के माली !

तुम्हारी अमृत-स्निग्ध अँगुलियो ने इसे इतना सीचा है कि इनका हर पौधा आज सुधा-स्नान हो रहा है।

यह सुललित हरियाली इसका प्रामाण्य दे रही है कि तुमने अपने कर्तव्य से जी नही चुराया है। यह सुरभि-परिमल स्वय साक्षी है कि तुमने कर्तव्य-पालन की नई परम्परा डाली है।

ओ गायक !

तुम्हारी स्वर-लहरी मे जो कम्पन है
उसमे हमने देखा है बहुत बडा विरोधाभास ।
तुम जब-जब गाते हो
तब भयभीत आदमी अभय बन जाता है
और अभय बन जाता हे भयभीत ।
तुमने जब गाया था दीपक-राग,
तब जल उठा था अनैतिकता का अचल ।
जब तुमने मालकोश का स्वर छेडा तो,
आकाश मे मुदिर झूम उठे ।
तुम्हारे स्वरो मे सह-अस्तित्व की जो लय है,
उसमे विलीन होकर ही मनुष्य
अपने को कर सकता है अभिव्यक्त ।

ओ लेखक।

तुमने जो लिखा है,
उसका लेखा-जोखा क्या तुम्हारे पास है ?
मेरी समझ मे नही है।
क्योकि तुम गणितज्ञ नही हो,
तुम गिनना नही जानते।
तुम लिखते ही चलो—
गिनने वाले स्वय गिन लेंगे।
तुम्हारी लिपि मे जो स्फुटन हुआ है
उसमे—
प्राण है,
तपने की क्षमता है और
खपने की उत्कण्ठा है।
तुमने कुण्ठा को सदा प्रताडित किया।
प्रताड़ना का उपयुक्त क्षेत्र
तुम्हारी दृष्टि मे वही है।

ओ चित्रकार !

तुमने अपनी चित्रशाला की प्रवणभित्ति मे कुछ नये अकन वि
है।

कितने सजीव है वे चित्र, जो चिन्तनशील होकर निर्विकल्प व
ओर वढ रहे है—

जो वाक्पटु होकर मौन की ओर वढ रहे है।
जो कर्म-कुशल होकर स्थैर्य की ओर वढ रहे है।
अद्भुत है तुम्हारा चित्रण।
अद्भुत है तुम्हारी शैली।
एक दिन हमने देखा
तुम चित्रशाला की घुटाई कर रहे थे।
आज उसमे प्रतिविवित हो रहा है
वह सव कुछ,
जो तुम वनाना चाहते थे।

शान्ति कैसे मिले ?

शान्ति कैसे मिले ? यह एक प्रश्न है, जो सबसे बड़ा और सबसे पहला। एक छोर समृद्धि का है, दूसरा गरीबी का। दोनो ओर से ध्वनि होती है—शान्ति कैसे मिले ?

गरीबो के पास धन नही, उन्हे धन के भीतरी रूप का परिचय नही है। वे उसके बाहरी रूप पर झूमते हैं। उनके लिए अभी सर्वोपरि आकर्षण धन है। वे कहते है - शान्ति कैसे मिले ? इसका अर्थ है कि धन कैसे मिले ?

धनी लोग धन का भीतरी रूप देख चुके है। वे जानते है, धन और सब कुछ देता है, अच्छी रोटी, अच्छा कपड़ा, अच्छा मकान; पर विश्वास को निगल जाता है और चट कर जाता है प्रेम को। धनी को अपने बेटे का भी विश्वास नही होता और प्रेम नही होता अपनी पत्नी से भी। विश्वास और प्रेम की गरीबी मे उनकी अन्तरात्मा पुकार उठती है—शान्ति कैसे मिले ? इसका अर्थ है कि विश्वास और प्रेम कैसे मिले ?

गरीब धन के लिए तड़प रहे है और धनी तड़प रहे है विश्राम और प्रेम के लिए। शान्ति मिली उसको जो न गरीब ही था और न अमीर भी, किन्तु जिसके पास था—विश्वास और प्रेम।

प्रेम हो, विकार नहीं

प्रेम भले हो, विकार नही चाहिए। प्रेम का अर्थ है—आत्मा के प्रति आत्मा का आकर्षण। वह देहगामी होते ही विकार बन जाता है। जो विकार से आपस मे बधते है, वे एक-दूसरे का अनिष्ट करते है। विकारी को वियोग सताता है। उससे पल-पल शरीर, मन और आत्मा की शक्ति क्षीण होती है। शक्ति को क्षीण बनाकर कोई भी सम्मानपूर्ण जीवन नही जी सकता। प्रेम का मार्ग इससे भिन्न है। उसमे क्षेत्र और काल का अलगाव नही होता। वह व्यापक है। प्रेम करने वाला आत्मौपम्य की दृष्टि से सबको सब जगह देखता है।

विकार विष का घडा है। उस पर अमृत का ढक्कन लगा है। विकार का आरम्भ मधु-भाव से होता है और उसका अन्त कटु-भाव मे।

प्रेम अमृत से ढका अमृत का घडा है। उसके आरम्भ और अन्त —दोनो मधुर होते हैं।

दूसरो के सौन्दर्य (चैतन्य-विकास) पर झूम उठो पर किसी की चमडी या उसकी बनावट मे आनन्द मत लो। दैहिक सौन्दर्य एक दिन मिट जाएगा। विकारी दिल फट जाएँगे। फिर एक-दूसरे के दोष का रहस्य खुलेगा।

आत्मा का सौन्दर्य अमिट है। प्रेम जागने पर फिर नही सोता। जिसे सब प्रिय है, वह किसी को विकार की ओर नही ले जाता। प्रिय वह नही जो दूसरो को विकार की ओर खीचे। प्रिय वही है जो दूसरे के विवेक को जगाए, आनन्द की सीख दे।

प्रिय कौन ?

ब्रह्मचर्य मुझे प्रिय है। इसलिए मुझे वही व्यक्ति प्रिय होगा जिसे ब्रह्मचर्य प्रिय हो। प्रियता रुचि की समता से फलती है। अप्रियता किसी से भी नही होनी चाहिए। किन्तु अप्रियता का अभाव और प्रियता आदि से अन्त तक एक ही नही है। अप्रियता के अभाव से आगे की एक विशेष मनोदशा जो सात्विक अनुरागात्मक है—प्रियता है।

प्रियता वह नही जो आपात-भद्र मार्ग मे ले जाए। हो सकता है वह मोहवश प्रिय लगे, किन्तु बुरी आदत जो डाले वह परिणाम-विरसता के क्षणो मे प्रिय बना रहे, यह सम्भव नही लगता।

आखिर श्रद्धा वहा पनपती है जो असत् से सत् की ओर ले जाए। पहले क्षण मे श्रेय का मार्ग भले अप्रिय लगे किन्तु प्रियता का स्थिर-पद वही है। वासना का आकर्षण मनुष्य मे रिक्तता पैदा करता है और वह वासना से कभी भरती नही। वह रिक्तता मनुष्य को बेचैन बना देती है। वही बेचैनी उसे वासना-हीन मार्ग की ओर जाने को प्रेरित करती है। यहा श्रद्धा और वासना के मार्ग भिन्न है—यह स्पष्ट हो जाता है।

प्रेम किससे ?

मैं विद्या-प्रधान हू—यह लोक-पक्ष है। मेरा निजी पक्ष यह नही है। मेरी मान्यतानुसार मै चरित्र-प्रधान हू। मै चरित्र को जीवन का सर्वोपरि सर्वस्व मानता रहा हू।

विद्या मुझे कम प्रिय नही है किन्तु उसे मै चरित्र से अभिन्न ही मानता हू।

एक शब्द मे चरित्र का अर्थ है—ब्रह्मचर्य।

भगवान् ने आचार को ब्रह्मचर्य कहा है। जिसने ब्रह्मचर्य को खो दिया वह आचार को नही निभा सकता। इस माने मे वह सही है। मेरे लिए ब्रह्मचर्य का प्रश्न महत्त्वपूर्ण है। मेरा भला इसी मे है कि मै किसी से प्रेम न करू या उन्ही से करू जो स्वय ब्रह्मनिष्ठ हो और मुझे अपने साध्य की ओर आगे ले जाए।

प्रेम कैसे ?

वाग्देवते !

तू मुझे बहुत प्रिय है। किन्तु यह कलेवर मुझे प्रिय नही है। प्रिय है तेरी आत्मा। कलेवर को छूने वाले बहुत है। उनसे तेरी शोभा आज तक नही बढी है। मैं तेरी आत्मा का द्रष्टा बनूं, यही मेरा साध्य है।

यह जीवन अमृत का घडा है। सारी शक्तिया इसमे स्वय सचित है। अब्रह्मचर्य का छेद उन्हे क्षरणशील बना देता है। फिर मनुष्य कोरा ढाचा रह जाता है। प्रतिभा की सूक्ष्मता, आत्मा का बल, सैद्धान्तिक स्थिरता और आत्म-विश्वास—ये सारे चले जाते है।

वाग्देवते !

तेरी महिमा इसी मे है कि तू मुझे अपने प्रिय साध्य की ओर ले जाए। मेरी गरिमा इसी मे है कि मैं तेरी विशद-ख्याति का हेतु बनू। मैं तुझे अपने मे निष्ठ हुआ देखना चाहता हू। मै जानता हू निष्ठा मे विनिमय नही होता।

दूसरे को स्वनिष्ठ बनाने वाला तन्निष्ठ न बने वह वञ्चना है—इसे मैं अस्वीकार नही करता।

मैं चाहता हू—

तेरी और मेरी निष्ठा समवेणीय हो।

मैं तुझे पाऊं, तो ब्रह्म के साथ-साथ पाऊं, नही तो नही।

प्रेम के प्रतीक

मेरे साध्य है—वे स्थूलीभद्र, जो कोशा के कमनीय हाव-भाव और शृ गार से लव भर भी विचलित नही हुए ।

मेरे साध्य है—वे स्थूलभद्र, जिन्होने कोशा की बाकी चितवन की अवहेलना कर डाली ।

मेरे साध्य है—वे विजय, जिनकी काम-विजय आज भी हमे विजय के लिए अभियान की प्रेरणा दे सकती है ।

मेरे साध्य है—वे विजय, जिनका भेद-चिन्तन अभेद को देख ही नही पाया । वह अपवाद ही रहा ।

मेरे साध्य है—वे सुदर्शन, जिनके चैतन्य दीप को प्रलय-पवन न बुझा सका और जिन्हे मौत न डरा सकी ।

मेरे साध्य है—वे सुदर्शन, जो काजल की कोठरी मे पैठकर भी कालिख से बचे और जिन पर कजरारी आँखे कालिख नही पोत सकी ।

भविष्य-दर्शन

भविष्य को उज्ज्वल वनाना चाहे, उसे ब्रह्मचारी रहना ही होगा। ब्रह्मचर्य तव आता है जव सयम हो। सयम का आधार दया है। दया लज्जा से टिकती हे।

अब्रह्मचर्य आपात-प्रिय भले लगे, परिणाम-प्रिय नही है। विशुद्ध प्रेम वही है, जहा दैहिक-विकार न हो। स्थायी प्रेम वही होता है, जो विशुद्ध हो।

हमारा भला इसी मे है कि हम इन्द्रिय और मन को जीते। बलात् ब्रह्मचर्य की भावना पैदा नही की जा सकती। इन्द्रिय पर क्वचित् नियत्रण किया जा सकता है। मन नही वाधा जा सकता।

ब्रह्मचर्य हृदय वदलने पर ही आ सकता है। मै अपना हृदय कैसे वदलू ? यह मेरा अपना प्रश्न है। दूसरे का हृदय कैसे वदलू ? यह समस्या है। कमी मेरी अपनी है। मेरा सयम, उतना परिपक्व नही, समस्या यही है। मेरा सयम सुदृढ हो तो दूसरे पर उसका असर हुए विना नही रह सकता। जो दूसरो को सयत वनाना चाहे, उसे स्वय अधिक सयत वनना चाहिए।

ब्रह्मचर्य और अहिंसा

मैं अहिंसक हू, अहिंसा मेरा साधन है, अभेद मेरा साध्य है।

मैं सत्य-निष्ठ हू, सत्य मेरा साधन है, पवित्रता मेरा साध्य है।

मैं ब्रह्मचारी हू, ब्रह्मचर्य मेरा साधन है, ब्रह्म-रमण मेरा साध्य है।

अहिंसा सत्य से व्याप्त है, सत्य अहिंसा से। ब्रह्मचर्य दोनो से व्याप्त है। ब्रह्मचर्य से मेरी श्रद्धा दृढ होती है तो अहिंसा और सत्य का विकास होता है। ब्रह्मचर्य मे शिथिलता आती है तो सत्य टूटता है और अहिंसा भी। ह्मब्रचर्य को ठीक रखे विना मैं न सत्यनिष्ठ वन सकता हू और न अहिसक भी।

हिंसा और असत्य दोनो की जड वासना है। ब्रह्मचर्य का अर्थ है—वासना का उच्छेद। कार्य व्यक्त होता है, वासना छिपी रहती है। कार्य-निरोध सयम से होता है, वासना धुलती है अहिंसा से। अहिंसा यानी समता। समता यानी आत्म-दर्शन। जो अपने मे, दूसरे मे, सब मे, आत्मा ही आत्मा को देखता है, आत्मा मे परमात्मा को देखता है, वह ब्रह्मचारी बन जाता है। ब्रह्मचर्य से अहिंसा आती है और अहिंसा से ब्रह्मचर्य। दोनो एक ही साध्य के दो पार्श्व है। इनमे पौर्वापर्य नही है।

आत्मा और परमात्मा

'य परात्मा स एवाऽ्ह'—'जो परमात्मा है, वह मैं हू और जो मैं हू, वही परमात्मा है।' प्रत्येक आत्मा परमात्मा है। कुछ लोगो का विश्वास [है—'आत्मा मे परमात्मा हे ।' हमारा विश्वास है—'आत्मा ही परमात्मा है।' आत्मा और परमात्मा के बीच भय, घृणा, आसक्ति और विकार—ये दीवारे है। इनका निर्माण आवरण की ईटो से होता है। हर मनुष्य ही नही, हर जीवित वस्तु आत्मा है। उस पर शरीर का आवरण है। जो आवरण को ही देखता है, वह भय, घृणा, आसक्ति और विकार से भर जाता है। हम अभय बनना चाहे, स्वस्थ और निर्विकार बनना चाहे तो आत्म-दर्शन का अभ्यास बढाए। जिससे हमे घृणा है, डर है, आसक्ति है और विकार है, उसमे आत्मा विराजमान है। उस आत्मा मे हमारा इष्टदेव परमात्मा विराजमान है। परमात्मा का भक्त क्या परमात्मा से डरेगा? क्या वह परमात्मा से घृणा करेगा? क्या वह उसे आसक्ति और विकार का हेतु बनाएगा?

बलवान बनो।

लोग चिल्लाते है—कहने वाले बहुत, सुनने वाले कम, और मानने वाले बहुत कम। दोप किसका है—वक्ता का या श्रोता का? श्रोता को दोष-भागी कहा ही जाता है, पर कुछ तो वक्ता भी होगा। आखिर उसका कहना खाली ही क्यो जाता है? कमजोर धनुर्धर वाण फेकता है, चमडी बिंध जाती है पर उससे हृदय नही बिंध सकता।

वक्ता दुर्बल होता है, वह श्रोता के कान तक पहुच सकता है किन्तु उसके हृदय को नही छू सकता।

दुर्बलता को शरीर की कृशता से नही नापना है। जो सिद्ध ब्रह्मचर्य नही—वही दुर्बल है। बलवान बनिए। श्रद्धा का बीज बोया जा सकेगा, ज्ञान का अकुर फूट पडेगा। कहने की जरूरत कम होगी, लोग सुनना अधिक चाहेगे।

इच्छा और सुख

जिसकी सारी कामनाएं मिट चुकी, वह कितना सुखी होगा ? यह अनुभव की वाणी है। तर्क से इसका कोई लगाव नही।

जो अपने को अकिंचन मानता है वह तीन लोक का अधिपति है। जो सब पर ममत्व रखता है वही सबसे बडा दरिद्र है। तर्क की भाषा मे जो अधिक सम्पन्न है, वह अधिक सुखी है। किन्तु वस्तु-सत्य ऐसा नही है।

बहुत सारे लोग साधन-सम्पन्न होते हुए भी तिलमिलाकर जीते हैं। बहुत सारे साधनहीन होते हुए भी आनन्द का जीवन जीते है। पूरा सुखी होता है, उसे इच्छा नहीं होती। इच्छा होती है, उसे पूरा सुख नही होता। इच्छा सुख की कमी का चिह्न है।

मैंने क्या किया ?

आँख खुली होती है, तब अपने को धन्य मानता हू । जिसे देखना चाहिए, उसे नही भी देखता । किन्तु जो नही देखना चाहिए, उसे बडे प्यार से देखता हू । आख मूँदने पर वर्तमान भूत से पूछ बैठता है—'मैंने क्या किया ?'

जीभ चलती है, तब अनिर्वचनीय सुख की अनुभूति होती है । किसलिए खाना चाहिए ? यह सिद्धान्त उसकी तहो मे छिप जाता है । स्वादपूर्ण वस्तु खाना मानो जीवन का साध्य हो, वैसे खा जाता हू । आमाशय पर कितना बोझ डाला, यह भी खयाल नही रहता । पानी पीने के समय फूली हुई आते मुझे चौका देती है—'यह मैंने क्या किया ?'

मन मे हिलोर उठती है । कल्पना की पीठ पर सवार हो अनन्त की ओर उड जाता हू । आनन्द की धारा बह चलती है । इस छोर से उस छोर पल मे घूम आता हू । समझने लगता हू—मै सफल हो गया । मन शान्त होता है और यथार्थ की नुकीली धार मुझे खरोचने लग जाती है । मोह का छिलका हटते ही दिल रो उठता है—'हाय ! यह मैंने क्या किया ?'

शेष क्या है ?

वह क्या है, जो अभी बाकी है ? यह सोचू या यह सोचू कि वह क्या नही है जो अभी बाकी है। जो करना चाहिए, वह लगभग सारा का सारा बाकी हे। जो नही करना चाहिए, वह कितना बाकी है या नही, यह कौन जाने ?

साधना मे आया, कुछ करने लगा। उसमे मन रमा, कुछ आगे बढा। सफलता के क्षणो मे देखता हू, कुछ हो रहा है। असफलता के क्षणो मे सोचता हू, करना अभी बहुत बाकी है। अशेष दुर्बलता मिट जाए, तब कुछ भी करना शेष नही रहेगा। जब तक दुर्बलता शेष है, तब तक कृत्य भी शेष रहेगा।

प्रिय-शत्रु

भौतिक बन्धन से दूर होना चाहता हू, फिर क्या वरदान मांगूं। अभिलाषा के उस पार जाना चाहता हूं, फिर क्या प्राथना करू ? पर यह बन्धन है। आखिर देव-दर्शन की मर्यादा को कैसे तोड ू ?

देव ! तुम वरदान देना चाहो तो यही दो कि मुझसे किसी को उन्मार्ग पर जाने का प्रोत्साहन न मिले।

देव ! तुम प्रार्थना स्वीकार करो तो यही करो कि मै किसी का प्रिय-शत्रु न वनूं।

अप्रिय-शत्रु से कोई हानि नही होती। प्रिय-शत्रु अस्तित्व मिटा डालने है। जो प्रियता के बहाने अपने प्रियाभास को अप्रिय परिणाम की ओर ले जाए, वह प्रिय-शत्रु होता है।

देव ! मैं तुम्हारी उपासना का प्रतिफल चाहू तो यही चाहू कि मैं किसी का प्रिय-शत्रु न वनूं और कभी न वनू। देव ! मुझे शक्ति दो, वल दो, प्राण दो।

ब्रह्मचर्य की फलश्रुति

काम-वासना एक तीव्र मनोविकार है। क्रोध, भय और शोक का जैसे बुरा असर होता है, वैसे ही वासना-वेग से शरीर रोग-ग्रस्त और विकारमय बन जाता है।

यह विकार पहले-पहल मन मे उत्पन्न होता है। इसीलिए वह 'मनोज' या 'संकल्प-योनि' कहलाता है।

साधक ने कहा—

'काम ! जानामि ते रूप, सकल्पात् किल जायसे।

न त्वा संकल्पयिष्यामि, ततो मे न भविष्यसि ॥'

'काम ! मैं जान गया, तू सकल्प से पैदा होता है। मै तेरा सकल्प ही नही करूंगा, फिर तू मेरे मन मे कैसे पैठेगा ?'

किन्तु यह सच है—सारे स्थूलिभद्र और सुदर्शन नही होते। साधारण लोग भोग का सकल्प करते हैं और उसका अनिष्ट परिणाम भोगते है। काम-वासना का अनिष्ट-परिणाम प्रधानतया नाडी-मण्डल (Nervous system) और अन्त स्रावक पिण्डो पर होता है। कामवासना तीव्र होती है तो उसका परिणाम बहुत भयकर होता है। कामी लोग वाहर से स्थूल लगते है, उनकी अन्तर की शक्तिया क्षीण हो जाती हैं। ब्रह्मचारी की विशेषता है—आत्म-बल, प्रतिभा और दृढ सकल्प।

सुन्दर बनूं

वह क्या है, जो मैं नही कर सकता ? सब कुछ कर सकता हू। पर करता उतना ही हू जितना कि प्रकाश मिलता है। वह क्या है, जो मैं कर सकता हू पर नही कर रहा हू। मैं भली-भाति जानता हू कि यह अच्छा है, यह बुरा। हित और अहित का विवेक भी मुझे मिला है। मेरे आचार्य ने दो अक्षर का बोध देने का मुझ पर अनुग्रह भी किया है, पर बाकी है अभी सुन्दर बनना।

मैं सुन्दर नही हू, इसका मुझे गौरव है। वह इसलिए है कि मेरे लिए बहुत जाल नही बिछाए जाते। शरीर का सौन्दर्य असत्य है। मेरा सकल्प है—सत्य बनू, शिव बनू। ऐसा नही बनता हू, तब तक सब कुछ बाकी है। मैं न पढ रहा हू, न लिख रहा हू। मेरे ग्रथ किसी को कुछ नही दे सकते। मै सुन्दर बनकर ही कुछ दे सकता हू। किया न किया सब समान है—जब तक मै सुन्दर न बनू। बाकी यही है—मै सुन्दर बनूं।

बड़े और छोटे

कोई भी व्यक्ति मानसिक झुकाव से बच सकता है—यह सभव नही है। छोटो की चीख-पुकार अपने होठो तक ही होती है, वह बडो का दिल नही पिघाल सकती। जीवन का सबसे बडा मत्र है शक्ति। शक्तिधर ही सम्मान का जीवन जी सकता है। बडो के सामने दीन-गाथाए गाना तब तक बेकार है जब तक छोटो की शक्ति आगे न बढ जाए। इसलिए रोने की बात भूल जाओ। दीन बनने का नाम न लो। मन की व्यथा बडो के सामने मत रखो। वहा तुम्हारा कोई भला न होगा। उनके पास सुनने को कान होते है, विचारने को मस्तिष्क किन्तु सहानुभूति के लिए हृदय नही होता।

व्यथा व्यथा को पकड सकती है। छोटे फिर भी तुम्हे सहानुभूति दे सकते हैं किन्तु वे कुछ कर नहीं सकते। करुणा रुला सकती है पर सबको नही। उत्तम बात यह है कि करुणा की वृत्ति बने ही नही। हीनता आए और मुह पर झलक पडे, यह मध्यम भाव है। वह मुह से निकल पडे इससे अधिक अधम भाव और क्या होगा?

झपट

सम्भवत वह कबूतर था। वह आया होगा रात के वाद मगल-प्रभात का स्वप्न लिए। किन्तु उसने पाया कुछ और। आला खाली था। केवल अण्डे थे। उनका पोपण करने वाली नही थी। वह कमरे के चारो ओर घूमा। पर उसे पा नही सका।

मैं शवासन करने को सो रहा था। वह मेरी ओर देखने लगा। मैंने उसकी करुण आखो मे मूक वेदना की गाथा को पढा और पढा उसकी अन्तर् आत्मा को। मुझे स्मरण हो आया उस भगवद् वाणी का—'जहा सयोग है, वहा वियोग होगा। जो सयोग मे सुखी है वह वियोग मे दु खी होगा। सुखी वह है जो सयोग वियोग की अनुभूति से ऊपर उठ जाए।

वियोगी कबूतर का दिल रो रहा था। अब अण्डे भी उसके लिए भार थे। पालन मा ही कर सकती है, पिता मे उतना प्रेम नही होता जितना कि पालन मे होना चाहिए। कबूतर भार के दायित्व से झुक-सा रहा था। किन्तु यह भार उस बिल्ली को नही लगा जिसने कबूतर की स्वप्न-सृष्टि को एक ही झपट मे उठा लिया था।

सहज क्या है ?

जो मन को भाता है वही सुख है, या कुछ और ? जो सहज लगता है वही सुख है या कुछ और। इन्द्रियों की सहज गति विषय की ओर है। मन भी निरन्तर पदार्थों की ओर दौड़ता है। आराम करने में सुख है, काम करने में नहीं। असत्य बोलने में जो रस है, वह सच बोलने में नहीं। अहिंसा की साधना करनी पड़ती है, हिंसा सहज है। ईंट का जवाब पत्थर से देने में जो पौरुष की कल्पना है, वह सह लेने में नहीं है। इन्द्रिय और मन वासना से सहमा भर जाते हैं और उससे मुक्ति प्रयत्न करते-करते भी नहीं मिलती। अपरिग्रह की बात सुनते-सुनते बहरे हो गए पर हृदय ने उसे कभी नहीं पकड़ा। परिग्रह के लिए हजार कष्ट झेलने की तैयारी रहती है।

लौ से लौ

मैं जो कुछ करू वह लोकैषणा से मुक्त होकर करू, ऐसी प्रेरणा मिलती है। श्रद्धा जागती है, समय-समय पर दृढ निश्चय भी किया करता हू। किन्तु कार्यकाल मे जो मानसिक स्थिति बनती है उसके बारे मे कुछ नही बनता। इसकी गहराई मे क्या छिपा हुआ है—यह ढूढ निकालना असम्भव जैसा हो रहा है। फिर भी मेरे चिरन्तन चिन्तन के बाद मुझे जो कुछ सूझा वह यही है—हमारा जीवन परावलम्बी है। हम अपने आपमे ऊचे-नीचे, छोटे-बडे कुछ भी नही हैं। जो मैं लिख रहा हू, वह मानसिक जगत् की बात है, बाहरी जगत् मे हमारे लिए चाहे जैसी कल्पनाए की जाती हो।

बाहरी जगत् का मानसिक जगत् पर असर हुए बिना नही रहता। मेरा स्वय को बडा समझने का मानदण्ड वही है, जिससे दुनिया दूसरो को बडा समझती है। मै दुनिया के पीछे चलना नही चाहता, किन्तु मुझे बडा बनने की भूख है। इसलिए मुझे अनिच्छा से भी उसके पीछे चलना होता है। कोई भी आदमी पद के लिए उम्मीदवार न बने प्रतिष्ठा की भूख न रखे यह ठीक है, नीति की पुकार है। किन्तु जब सत्ता के प्रागण मे सत्ताधीश के साथियो और सगे-सम्बन्धियो का लालन-पालन देखता है, तब दर्शक के मुह मे सत्ता की लार टपक पडती है और उसके साथी-सगे भी उसे सत्ता की ओर झुकने के लिए बाध्य किए बिना नही रहते। मुझे विश्वास है कि मै इस प्रसग मे भूल नही रहा हू।

व्रत की भूमिका

व्रत व्यक्ति का 'स्व' है। वह बलात् नही होता, स्वेच्छा से किया जाता है। व्रत कोई बाहरी वस्तु नही है। वह इच्छा और आचरण का नियमन है। व्यक्ति मे इच्छा पैदा होती है और आचरण मे उसकी अभिव्यक्ति होती है। वह आचरण न किया जाय, जिससे आत्मा का विकास रुके और उसकी इच्छा भी मिट जाय वैसा अभ्यास किया—यही है व्रत।

व्रत आत्म-सयम से आते हैं। आत्म-विकास के लिए सकल्प पूर्वक स्वीकार किए जाते है, इसीलिए वे सामाजिक सुविधा-असुविधा से बनते-बिगडते नही।

व्रत का परिपाक दीर्घकालीन साधना से होता है। व्रत की पहली भूमिका है श्रद्धा का जागरण, बीच की है स्थिरीकरण और अन्तिम है आत्म-रमण।

श्रम ग्रौर बुद्धि

सब-के-सब-बुद्धिजीवी बन जाए, तो क्या खाए, क्या पीएं और कहाँ रहे ? सब-के-सब श्रमजीवी बन जाएं तो मनुष्य के बौद्धिक विकास का द्वार खुला कैसे रहे ? इस समस्या पर विचार करने पर निष्कर्ष यह निकलता है कि सबमे बुद्धि-कौशल समान नही होता और जिनमे बुद्धि-कौशल तुल्य भी होता है उन्हे भी अवसर समान कहा मिलते है ? समान अवसर पाने वाले भी समान लाभ नही उठा सकते। इस स्थिति मे दो वर्ग कभी टूट जाय, यह कदापि सभव नही। सम्भव है दोनो का समन्वय। बुद्धिजीवी श्रम को नीचा न माने और श्रमजीवी बुद्धि को ऊचा न समझे। फलित की भाषा मे बुद्धिजीवी अपना आवश्यक श्रम दूसरो से न ले, काम करने मे लज्जा का अनुभव न करे। उसी स्थिति मे वे अपरिग्रह की ओर आगे बढ सकते है।

० ०

श्रम करते रहना चाहिए—यह उतना मूल्यवान् नही जितना मूल्य इसका है कि प्रयोजन की पूर्ति के लिए श्रम करना चाहिए।

मेरे आचार्य

मेरे आचार्य आत्मगवेषक हैं। उनका जीवन जन-जन के आत्म-हित में लगा हुआ है। उनका एकमात्र उद्देश्य आत्म-साधना है—इसलिए वे 'निज्जरट्ठिए' हैं।

वे सेवाभावी हैं—अनेक कष्टों को झेल, पाद-विहार कर लाखों में चैतन्य फूकते है, सोए हुओ को जगाते है। यह फलाशंसा के बिना होता है, इसलिए वे 'निरासए' है।

वे अल्पभाषी है—वे अधिकार की भाषा मे नही बोलते। वे विवेक-जागरण की बात कहते है—इसलिए वे 'अप्पभासी' है।

वे मित-भोजी है—जीभ के लिए नही खाते। यात्रा-निर्वाह के लिए खाते है। 'सचित-कर्म खपाना ही है, इस शरीर-धारण का अर्थ'—इस दृष्टि से खाते है—इसलिए वे 'मियासण' है।

वे अल्पोपधि है—अल्प किन्तु महार्घ्य के सामने उन्होने महान् किन्तु अल्पार्घ्य का आदर्श खड़ा किया है—इसलिए वे 'अप्पोवहिउवगरण' है।

वे अभय हैं—कर्तव्य या औचित्य सहज स्फुरित हो, शासन के भय से नही। वे डराकर कुछ कराना नही चाहते, विवेक-जागरण चाहते हैं—इसलिए वे 'नो वि य भावियप्पा' हैं।

वे पवित्र हैं—जागरूक वृत्ति से बरतते हैं। अल्प-निद्रा, अधिक स्वाध्याय, चिन्तन, मनन मे समय जाता है। विरक्ति के विचार आसक्ति को दूर किए हुए हैं। वृत्तियों की शान्ति सहज बना देती

हे—वे 'निस्सग' है।

वे जितेन्द्रिय है— इन्द्रियो मे दुर्जेयतम रसना है। स्वाद पर पूरा नियन्त्रण है। कम वस्तु, कम वार और कम मात्रा मे खाना प्रकृति-घटित घटना-सा वन गया है। दूसरी इन्द्रियो का सयम और मन का अवधान अवस्था और अधिकार का साथ नही दे रहा है। अतएव वे 'जिइदिय' है।

वे कष्ट-सहिष्णु है—विरोध को सदा विनोद मानकर चलते है। अनुकूल को सहा है, प्रतिकूल को भी सहा है। दूर को सहा है, नजदीक को भी सहा है। वहुत सहा है। सीमा से परे भी सहा है, वडे धैर्य से सहा है। गर्व के साथ कहा जा सकता है—हमारे आचार्य 'परिसह-रिउदता है।'

वे आनन्द-घन है—जिसकी कर्तव्य-निष्ठा जग गई—फल की आशा से जो मुक्त है, कम बोलता है, कम खाता है, वाहरी वस्तुओ से वधता नही, न डरता है, न डराता है, विकार जिसे नही छूते, विपद पर जिसका नियत्रण है, कष्टो से जो घवराता नही, उसमे क्या वचेगा? आनन्द-आनन्द-आनन्द। इसलिए हमारे आचार्य— 'आणदघण' है।

अहिंसा की समस्या

साथी बात-बात मे गुस्सा करता है, अट-सट बोलता है, बकवास करने मे भी नही चूकता, कभी गालिया भी सुना देता है। 'शठे शाठ्य समाचरेत्,'—इसका मतलब है—हिंसा। सामने के व्यक्ति को अहिंसक रहना है और साथी को भी साथ लिए चलना है। अगर शान्तिभाव से सब कुछ सहता चला जाता है तो लोग उसे कायर बताते हैं, अब वह क्या करे ?

० ०

साथी अभिमानी है, वह चाहता है—पूजा, प्रशसा और गुणानुवाद। अहिंसक को वह न रुचे। वह उसका उत्कर्ष न साध सके, तब सघर्ष होता है। उसकी आत्म-सन्तुष्टि अथवा सघर्ष को टालने के लिए क्या अहिंसक चलती बातें करे ? अगर न करे तो उसका परिणाम होता है—आपसी अनबन। इस स्थिति मे वह कौन-सा मार्ग चुने—पहला या दूसरा ?

० ०

साथी मायावी है। वह छल से चलता है। कहता कुछ है और करता कुछ। मन मे कुछ है और बाहर से कुछ ही दिखाता है। इस

ह्लालत मे अहिंसक उसके साथ कैसे चले ?

० ०

साथी लोभी है। वह हर काम लालच से करता है, स्वार्थ को आगे किए चलता है। अपनी चीज़ो पर ममत्व है। उनकी चिन्ता करता है। दूसरो की वस्तुओ का प्रयोग करता है। अच्छी चीज़ो पर टट पडता है। उसकी चीजो का दूसरा कोई उपयोग करे तो बिगड जाता है। खान-पान की भी आसक्ति है। अहिंसक को उसे कैसे पाना चाहिए ?

संयम-शान्ति

मैं यह नही पूछता हू कि सम्पदा का मूल्य क्या है ? मैं यही पूछा करता हू कि चैतन्य का मूल्य क्या है ? सम्पदा स्वय मूल्यहीन है। हमारे ही चैतन्य ने उसमे मूल्य का आरोप किया है। सम्पदा के मूल्य को चैतन्य के मूल्य से अधिक माने, यह कैसी समझ है ! यह कैसा विज्ञान है ! सबसे बडी समझ और विज्ञान है —समता। समता अर्थात् मनुष्य की मनुष्य के प्रति घृणा न हो, वैर-विरोध न हो, कुचलने की मनोवृत्ति न हो।

जीवन का सर्वोपरि साध्य है—शान्ति। वह न तो सम्पदा होने से मिलती है और न सम्पदा न होने से मिलती है। वह मिलती है मन की स्थिरता से। स्थिरता का विकास इन्द्रिय और मन के सयम से प्राप्त होता है। जीवन का साध्य है शान्ति और उसका साधन है सयम।

कोई व्यक्ति बोले ही नही, चले ही नहीं, खाए-पिए ही नहीं, दान-नीति और अर्थनीति का विकास हो ही नहीं, यह मैं नहीं कहता। मैं जो कहना चाहता हू वह यह है कि इन सबमे मनुष्य सयम रखे। ये असयत होते है, उससे शान्ति का सन्तुलन नष्ट होता है। हम अपने-आपको अशान्त बनाकर दूसरो को शान्ति नही दे सकते। और दूसरो की शान्ति भग कर हम शान्ति नही पा सकते। व्यक्तिगत सयम के अभाव मे व्यक्ति अशान्त होता है, सामाजिक संयम के अभाव मे समाज अशान्त होता है और राष्ट्रीय सयम के अभाव में राष्ट्र अशान्त होता है।

आशा और निराशा

आशा जीवन है और निराशा मृत्यु—यह विश्रुत-विचार है। जीवन से आशा और मृत्यु से निराशा की धारा प्रवाहित होती है—यह हमारी सहज अनुभूति है। जीवन और उसके सुख की कल्पना उद्‌भूत होती है और आशा की सरिता का कलेवर विपुल बन जाता है। मृत्यु के रौद्र रूप की कल्पना मूर्त बनती है और निराशा की रेखाए स्फुट हो जाती है। जीवन और मृत्यु विश्व-पर्वत की अधित्यका और उपत्यका है। उनमे कौन चोटी है और कौन तलहटी—यह एकान्त की भाषा मे नही कहा जा सकता। आशा और निराशा विश्व-सरिता के महान् आवर्त्त हैं। काल इनकी परिधियो को सीमित किए चला जा रहा है। एक दिन आता है, हम किसी कार्य की कल्पना करते है। काल का चरण आगे बढता है और कल्पना या कृति स्मृति-मात्र रह जाती है। साधना का काल लम्बा होता है। उसमे कल्पना का उतार-चढ़ाव और भावो का तारतम्य होता है। साध्य-सिद्धि का समय स्वल्प होता है।

जीवन की कल्पना मे जो अनुभूति होती है वह जीवन के क्षण मे नही है। मृत्यु की कल्पना मृत्यु से अधिक भयकर है। कल्पनाकार काल की गहराई मे डूब चुके है। उनके अनुज सोचते है—क्या यह विश्व एक रंगमच नही है? क्या प्रत्येक प्राणी उसका अभिनेता नही है? क्या जीवन का कार्यकाल क्षणिक अभिनय नही है? क्या हम जो जी रहे हैं जो कर रहे है वह उसी रगमच पर अभिनय नही हो

रहा है ? आखिर कल ही विस्मृत हो जाने वाला, परसो ही मिट जाने वाला अभिनय का क्या हो सकता है ? इस रगमच का कोई भी अभिनय निरवधिक नही है। आज वे अभिनेता कहा है ? यह निराशा का आवर्त्त है। इसमे पुरुष और कर्त्ता का कर्तृत्व गतिहीन हो जाता है। निराशावाद किसी उन्मत्त का व्यथित चिन्तन नही किन्तु प्रत्यक्ष-दर्शन से प्रस्फुटित स्वस्थ विचार है। किन्तु सावधिकता का विचार क्या भूख-प्यास को बुझा देगा ? क्या वह राग-द्वेष के मनोभावो को मिटा देगा ? क्या वह प्रवृत्ति के समस्त स्रोतो को समाप्त कर देगा ? क्या जीवन, धन और सुत की एषणा को अनेषणीय कर देगा ? ऐसा नही होता, प्रवृत्ति का आवेग तीव्र होता है और कल्पना का दूसरा पार्श्व आगे आ जाता है, यह रगमच की प्रधान भूमिका है। इसमे नश्वरता का चिन्तन नही होता। मनुष्य शाश्वत मनोभावो को लेकर चलता है और रगमंच के अभिनेताओ एव उनकी कृतियो के मूल्यामूल्य की व्याख्या करता हुआ चला जाता है। यह आशा का आवर्त्त है। इसमे उत्साह द्विगुणित होता है और उछलकूद बढ जाती है।

ऐसा कौन होगा जो जीवन की परिधि मे आशावादी नहीं है, और मृत्यु की परिधि मे निराशावादी नहीं है—ऐसा भी कौन होगा ? पर यह चिर-सत्यो के प्रतिबिम्ब की स्वीकृति मात्र है। उपादेय सत्य यह है कि जीवनकीपरिधि मे मनुष्य निराशावादी भी बने और मृत्यु की परिधि मे आशावादी भी बने। मृत्यु कोई महा-रक तत्त्व नही है और जीवन कोई निर्माता नहीं है। ये सहार और निर्माण हमारी अपनी ही सृष्टि है। हम मरने के बाद भी जीते है और जीने के बाद भी मरते है। इसलिए हम मृत्यु मे निराशा और जीवन मे ही आशा को प्राप्त न करें किन्तु उन्ट को उपलब्धि के

लिए जीवन को और प्राप्त से अधिक सुन्दर भविष्य की कल्पना के लिए मृत्यु को भी आशा का स्रोत बनाए। हम मृत्यु से जैसे निवृत्ति का पाठ पढते है वैसे ही जीवन से भी निवृत्ति का पाठ पढे, प्रवृत्ति और निवृत्ति को सतुलित कर चले।

शिकायत

पिता को पुत्र से शिकायत है, पुत्र को पिता से। पति को पत्नी से शिकायत है, पत्नी को पति से। सास को बहू से शिकायत है, बहू को सास से। सगे-सम्बन्धियों की फिर क्या बात? गुरु को शिष्य से शिकायत है, शिष्य को गुरु से। यही अध्यापक और विद्यार्थी में भी चल रही है। अधिकारी को कर्मचारी से शिकायत है, कर्मचारी को अधिकारी से। यही मिल-मालिक और मजदूरों में झगड़ा है। यही सेठ और मुनीम में बीत रही है। भाई-भाई और मित्र-मित्र में शिकायत का यही स्वर गूंज रहा है। पत्थर को रस्सी से शिकायत है, रस्सी को पत्थर से। कहीं चले जाइए, शिकायत-शिकायत सुनते-सुनते कान बहरे हो जाएंगे। शिकायत करने वाले भी शिकायत से घबराते हैं और शिकायत से घबराने वाले भी शिकायत करते हैं। शिकायत को इस बात की शिकायत है कि शिकायत करने वाले आत्म-निरीक्षण नहीं करते। भगवान् महावीर ने कहा है—'आत्मा को आत्मा से देखो।' किन्तु अब शिकायत भी मौन नहीं है।

यह और वह

यह वही सुन्दरी है .
जिसका यौवन वरदान बन रहा था,
जिसका हर चरण हजारो दृष्टियो का नूपुर पहने चलता था,
जिसका सौन्दर्य दर्शक को स्नेह-बिन्दु की अतल गहराई मे डुब-
कया लगाने को विवश किए देता था ।

यह वही सुन्दरी है
जिसके लडखडाते पैर हजारो दृष्टियो मे उपहास भर देते है,
जिसके होठो की पपडी घृणा की लहर उत्पन्न कर देती है,
जिसका झुर्रियो मे सिमटा हुआ मुह करुणा के सागर मे ज्वार
ना देता है ।

यह वही सुन्दरी है '
जिसका बुढापा अभिशाप हो रहा है ।

तर्क की अन्त्येष्टि

आज का चतुर राजनयिक तर्क को कवच मानकर चलता है, पर यह भूल है। प्रत्यक्ष या सीधी बात के लिए तर्क आवश्यक नही होता। तर्क का क्षेत्र है, अस्पष्टता। स्पष्टता के माने है—प्रत्यक्ष। प्रत्यक्ष का अर्थ है—तर्क का अविषय। तर्क की अपेक्षा प्रेम और विश्वास अधिक सफल होते है। जहा तर्क होता है, वहा जाने-अनजाने दिल सन्देह से भर जाता है। जहा प्रेम होता है, वहा सहज विश्वास बढता है। पर अहिसा और कोरी व्यवस्था के कार्य दो है—अहिसा के मार्ग मे तर्क नही जाता और कोरी व्यवस्था के मार्ग मे प्रेम नही पनपता। तर्क की भाषा मे दोनो को अपूर्ण कहा जा सकता है। पर प्रेम कभी अपूर्ण नही होता। प्रेम की अपूर्णता मे ही तर्क का जन्म होता है। प्रेम की तरगो मे सारे तर्क लीन हो जाते है। यह प्रेम ही विराट् अहिसा है, जो सर्वभूत-साम्य की भावना से उत्पन्न होता है और आत्मौपम्य की सीमा मे ही फिर विलीन हो जाता है।

अज्ञेय

धन क्या है ? यह सोचता रहा हू पर समाधान नही मिला है। मनुष्य बुद्धिशील प्राणी है। इसलिए उसकी बुद्धि पर सहसा अविश्वास करना भी उचित नही है। पर मनुष्य मोहशील प्राणी है, इसलिए उसकी मूढता पर भरोसा करना भी अनुचित नही है।

मनुष्य ने सोना, चादी, मणि आदि पार्थिव वस्तुओ को धन मान रखा है। मानना बुद्धि का काम है, किन्तु जो तद्रूप नही, उसे तद्रूप मानते रहना मोह का सस्कार है। खान-पान जैसी आवश्यक वस्तुओ को धन मानना कुछ प्रयोजन रखता है,, किन्तु जिनका जीवन के लिए कोई उपयोग नही, उन्हे धन मानना कुछ भी अर्थ-वान् नही लगता। जिसने सोने को धन की सज्ञा दी, उसने मनुष्य-जाति का हित नही किया।

पूर्णता की अनुभूति में

आन्तरिक रिक्तता से बाहरी भार का चाप बढता है।

आत्मानुशासन की रिक्तता होती है, बाहरी नियंत्रण बढता है।

सहज आनन्द की रिक्तता होती है, मनोरजन के साधनो का विकास होता है।

प्राकृतिक सौन्दर्य की रिक्तता होती है, कृत्रिम साधनो का प्रचुर मात्रा मे प्रयोग होने लगता है।

दृष्टि-शक्ति की कमी होती हे, उपनेत्र चक्षु के परिपार्श्व को आवृत कर लेता हे।

जिसे प्रिय, सुन्दर और स्वादु कहा जाता है, वह रिक्तता की अनुभूति मे है। पूर्णता की अनुभूति मे वह प्रिय, सुन्दर और स्वादु नही हे।

मैं और वह

मैं चाहता हू कि जो मै देखता हूं वह दूसरे भी देखे और जो मैं नही देख सकता, वह भी देखे। मैं अपनी अच्छाइयो को अच्छी तरह देख लेता हू। अपनी दुर्बलताओ को भी पैनी दृष्टि से देखता हू। फिर भी बहुत सम्भव है—मुझमे जो विशेपताए विकास पा सकती है, उन्हे मैं न जानता होऊ। जो कमजोरिया तर्क की ओट मे छिपी पडी है, उन्हे न समझता होऊ। मैं खुली पुस्तक की भाँति स्पष्ट रहना चाहता हू। जिस दिन अपनी अच्छाइयो की अभिव्यक्ति का साहस और बुराइयो को न छिपाने का मनोभाव मुझमे प्रकट हो जायगा, उस दिन जो मै देखूगा, वही दूसरे देखेंगे। फिर मेरे और दूसरो के दर्शन मे कोई भेद नही होगा।

अभिव्यक्ति का मोह

मै क्या नही छोड रहा हू ? मैं लेता रहता तो क्या नही ले रहा हू ? यही प्रश्न आखो के सामने घूमता है। अब मैने छोडना भी सीख लिया, इसलिए छोडने की बात सताने लगी है। मै छोडना चाहता हू, उसे भी जिसे मैं सबसे अधिक प्यार करता हूं। किन्तु मुझे अभिव्यक्ति का मोह नही छोड रहा है। चाहे वह कैसा ही हो—सुडौल या कुडौल, गोरा या काला, लम्बा या ठिगना—मैं व्यक्त उसी से हुआ हू। मैं उसे छोड दू तो मेरा क्या होगा ? यह आशका छा जाती है। उसे नही छोडता हू तो बहुत कुछ नही छोड पाता हू।

आखिर बुरी बला अभिव्यक्ति का मोह है। उसे छोड़कर ही मैं सोच सकता हू कि मैं क्या नही छोड रहा हू।

चरम साध्य

मोक्ष-दशा मे आत्मा का पूर्ण विकास होता है या यू कहा जाय कि जो आत्मा की पूर्ण विकसित अवस्था है, वही मोक्ष है। सारे विजातीय सम्पर्कों को तोड आत्मा अपने रूप मे अवस्थित होता है तब उसके दैहिक उपाधि-जनित सब भेद मिट जाते है। देह-बद्ध दशा मे आत्मा उपचार दृष्टि से छेद्य, भेद्य, दाह्य और वध्य होता है। मुक्त दशा मे उपचार टूट जाते है। वह फिर सर्वथा अच्छेद्य, अभेद्य, अदाह्य और अवध्य हो जाता है, रूपी सत्ता के द्वन्द्व से मुक्त हो वह निर्द्वन्द्व बन जाता है। आत्मवादी का चरम साध्य यही है।

संघर्ष

सघर्प सामुदायिक जीवन का परिणाम है। जहा द्वन्द्व है, वहा सघर्प है। अकेले मे सघर्प होता ही नही। अकेला स्वेच्छा से खाए, पीए, रहे, कोई प्रश्न नही करता। वहा सघर्प कैसे हो ? सघर्प वहा होता है

जहा एक-दूसरे के स्वार्थ आपस मे टकराते हैं।

जहा विचारो का सुदूर विभेद होता है।

जहा 'स्व' का ही पोपण होता हे।

जहा सामान्य जनता की उपेक्षा होती हे।

जहा अधिकार अयोग्य व्यक्ति के हाथ मे होते है।

जहा कार्य-पद्धति अव्यवस्थित और विसप्ठुल होती है।

सक्षेप मे सघर्प वहा होता है, जहा असाधुता है।

अशान्ति और शान्ति

भौतिक जीवन का स्तर ऊचा होगा ।
आवश्यकताए बढेगी, शान्ति कम होगी ।
आध्यात्मिक जीवन उठेगा,
आवश्यकताए कम होगी, शान्ति बढेगी ।
आवश्यकता है वहा श्रम होगा, अशान्ति नही ।
आवश्यकता की पूर्ति सम्भव है,
आकाक्षा की पूर्ति असम्भव ।
पदार्थ के अभाव मे अशान्ति और भाव मे शान्ति—
ऐसी व्याप्ति नही वनती ।

मानसिक नियन्त्रण से मानसिक साम्य होता हे और वही शान्ति है । मानसिक अनियन्त्रण से मानसिक वैषम्य वढता हे, वही अशान्ति है ।

जहा आकाक्षा है, वहा अशान्ति है और जहा आकाक्षा नही वहा शान्ति है ।

शोषण का मूल जीवन की आवश्यकताए नही, मानसिक अतृप्ति है ।

◇ ◇